दैनिक भास्कर

Date: 29-11-25

फौज की वर्दी में अपने धर्म का नहीं, ड्यूटी का महत्व है

लेफ्टिनेंट जनरल सैयद अता हसनैन, (कश्मीर कोर के पूर्व कमांडर)

लेफ्टिनेंट सैमुअल कमलेशन के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले ने सशस्त्र बलों में निजी आस्था और पेशेवर दायित्वों के बीच रिश्ते को लेकर जरूरी बहस छेड़ दी है। उन्हें धार्मिक परेड में शामिल नहीं होने और मंदिर, गुरुद्वारा जैसे रेजिमेंट के पूजा-स्थलों में प्रवेश से बार-बार इनकार करने के कारण बर्खास्त कर दिया गया था। उनका कहना था कि ऐसा करना उनकी एकेश्वरवादी आस्था के खिलाफ है। लेकिन कोर्ट ने कहा कि उनका रुख रेजिमेंटल एकजुटता को कमजोर करने वाला था। कोर्ट ने इसे घोर अनुशासनहीनता करार देते हुए उनकी बर्खास्तगी को बरकरार रखा।

यूनिफॉर्म में निजी आस्था संस्थागत कर्तव्य पर हावी नहीं हो सकती। भारतीय सेना किसी भी दूसरे संस्थान की तुलना में सेकुलरिज्म के एक अनूठे मॉडल पर निर्मित हुई है। इसमें उपेक्षा नहीं, समावेश है। रेजिमेंटल मंदिर, गुरुद्वारा, सर्व-धर्म-स्थल, यूनिट चर्च पहचान, परंपरा, मनोबल और साझा उद्देश्यों के प्रतीक हैं।

मैं रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट स्कूलों में पढ़ा हूं। सेना में अधिकारी रहे मेरे पिता और मां सहज रूप से रेजिमेंटल मंदिरों, गुरुद्वारों और यूनिट चर्च आते-जाते थे। मेरी परवरिश इस्लाम में हुई है, लेकिन बचपन से ही मैंने देखा कि सेना में धर्म बांटता नहीं, बल्कि एकजुट करता है। और मेरे 40 साल के करियर में मैंने इसी पर अमल किया। एक युवा कंपनी कमांडर और बाद में तमाम ऑपरेशनल परिस्थितियों में कमांडिंग ऑफिसर के रूप में मैं यह जरूर सुनिश्चित करता था कि हर ऑपरेशन की शुरुआत और अंत सैनिकों द्वारा बनाए मंदिर में संक्षिप्त सभा से हो। इसलिए नहीं कि वह मेरी रीति थी, बल्कि इसलिए कि वह 'हमारी' रीति थी!

फौज की संस्कृति का सार यही है कि आप अपना धर्म छोड़ते नहीं, बल्कि उसका पालन अलग तरीके से करना सीख जाते हैं। तब वह निजी, विविधतापूर्ण और गरिमामयी बन जाता है। एक अधिकारी का काम जवानों के रीति-रिवाजों को जज करना नहीं, उनके साथ खड़े रहना है। अधिकारी की मौजूदगी मात्र ही जवानों का मनोबल ऊंचा कर देती है। उस वक्त वह ईसाई, सिख, मुस्लिम, हिंदू, पारसी नहीं, लीडर होता है।

कोर्ट ने बिल्कुल ठीक कहा कि संविधान हमारी धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करता है, लेकिन यह आजादी उस स्तर तक नहीं दी गई है कि किसी नियमपूर्ण आदेश को मानने से इनकार कर दिया जाए। विशेषकर फौज में तो अनुशासन और एकजुटता अपरिहार्य है।

ईसाई धर्म में आस्था रखने वाले सीओ ब्रिगेडियर डेसमंड हाइड ने 1965 में डोगराई की लड़ाई में 3-जाट का नेतृत्व किया था और महावीर चक्र के साथ-साथ अपने जवानों का अटूट सम्मान भी पाया। वे अपने जवानों से भी अच्छे भजन गा लेते थे। पूना हॉर्स के पारसी अधिकारी और परमवीर चक्र विजेता लेफ्टिनेंट कर्नल अर्देशिर तारापोर अपने धर्म के कारण नहीं, बल्कि आर्मर्ड कोर के महानायक के तौर पर याद किए जाते हैं। सिख रेजिमेंट का नेतृत्व ईसाई और मुस्लिम अधिकारी कर चुके हैं। मेरी रेजिमेंट गढ़वाल राइफल्स की कमान भी हर धर्म के अधिकारियों ने संभाली है।

यह धर्म की नहीं, बल्कि विश्वास की बात है। एक सिपाही अपने अधिकारी का अनुसरण सिर्फ उनकी रैंक के कारण ही नहीं करता, बल्कि इसलिए भी करता है कि उसे अपने अधिकारी के हरदम अपने साथ खड़े रहने पर भरोसा होता है- खतरे में, अनिश्चितता में और प्रार्थना में भी। इसीलिए सुप्रीम कोर्ट का फैसला मायने रखता है। यह फौज की अखंडता की पुनः पुष्टि करने वाला निर्णय है। यह व्यक्तिगत आस्था नहीं, सार्वजनिक एकजुटता से संबंधित है।

कोर्ट का यह निर्णय जनता को भी यह समझाने का मौका है कि फौज के जवान इसलिए किसी मंदिर या सर्वधर्म स्थल पर नहीं जाते कि वे किसी धर्म विशेष के अनुयायी हैं, बल्कि इसलिए जाते हैं कि वे एक बिरादरी का हिस्सा हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि क्यों फौजी खतरों की स्थिति की ओर, यहां तक कि सुनिश्चित मौत की ओर भी बेधड़क चल पड़ते हैं। क्योंकि उनका भरोसा एक-दूसरे पर होता है।

मिलिट्री सर्विस शायद एकमात्र ऐसा पेशा है, जहां कोई किसी संस्थान के लिए काम नहीं करता, बल्कि वो खुद एक संस्थान बन जाता है। तब एक बड़े, सामूहिक उद्देश्य के सामने निजी आस्था, पहचान, पसंद और अहंकार- सब दोयम हो जाते हैं। इसीलिए यूनिफॉर्म में किसी की आस्था नष्ट नहीं, रूपांतरित हो जाती है। उसे ताक पर नहीं रख दिया जाता, उसका सम्मान किया जाता है। जब हम भारतीय सेना की यूनिफॉर्म पहनते हैं, तो ये सवाल अहम नहीं रह जाता कि हमारा धर्म क्या है, बल्कि यह कि हमारी ड्यूटी क्या है!

दैनिक जागरण

Date: 29-11-25

वास्तविकता से मुंह मोड़ती आधुनिकता

डॉ. ऋतु सारस्वत, (लेखिका समाजशास्त्री हैं)

सर्वोच्च न्यायालय की यह हालिया टिप्पणी चर्चा का विषय बनी कि 'किसी संबंध के समाप्त हो जाने या अप्रिय हो जाने मात्र से उसे बाद में दुष्कर्म के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। विवाह के झूठे वादे पर लगाए गए दुष्कर्म के आरोप तभी स्वीकार्य होंगे, जब वे स्पष्ट और ठोस साक्ष्य से समर्थित हों। वयस्कों के बीच सहमति से बने संबंध का टूट जाना पुरुष के खिलाफ दुष्कर्म के आपराधिक मामले की आधारशिला नहीं बन सकता।' औरंगाबाद के एक वकील पर दुष्कर्म के मामले को निरस्त करते हुए न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना और न्यायमूर्ति आर. महादेवन की पीठ ने यह भी कहा, 'हर बिगड़े

हुए संबंध को दुष्कर्म के अपराध में परिवर्तित करना न केवल अपराध की गंभीरता को कम करता है, बल्कि आरोपित पर अमिट कलंक और गंभीर अन्याय भी थोपता है। आपराधिक न्याय प्रणाली का ऐसा दुरुपयोग अत्यंत गंभीर चिंता का विषय है।' यह पहला मौका नहीं है कि न्यायालय ने लिव-इन-में रह रहे जोड़ों पर ऐसी तल्ख टिप्पणी की हो। जून 2025 में शाने आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा था कि 'लिव-इन संबंध भारतीय मध्यमवर्गीय समाज के मूल्यों के विपरीत हैं और अक्सर कानूनी विवाद का कारण बनते हैं, जिसका महिलाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।'

अभी भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था ऐसे संक्रमण काल से गुजर रही है, जहां कथित नारीवादी समूह यह सिद्ध करने में लगे हैं कि स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता विवाह से मुक्ति में है। यही कारण है कि देश में ऐसी युवतियों की संख्या में वृद्धि हो रही है, जो विवाह को बंधन और दकियानूसी अवधारणा मानकर उसे नकार रही हैं और उसके विकल्प में लिव-इन रिलेशनशिप को महत्व दे रही हैं। आज की भारतीय युवा पीढ़ी स्वयं को आधुनिक मानते हुए परंपरागत नियमों की अनदेखी कर लिव-इन रिलेशनशिप को स्वतंत्र सोच का हस्ताक्षर मानकर स्वयं की पीठ थपथपाती दिखती है, पर कुछ समय बाद वह स्वयं को ऐसे चक्रव्यूह में फंसा पाती है, जिससे बाहर निकलना आसान नहीं। अदनान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2023) मामले में न्यायालय ने कहा था, 'पहली नजर में लिव-इन रिश्ता बहुत आकर्षक लगता है..., पर समय बीतने पर... ऐसे जोड़ों को अहसास होने लगता है कि उनके रिश्ते को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली है और वह जीवन भर नहीं चल सकता...।'

मानव विज्ञानी जेडी अनविन एक विस्तृत और गहन शोध के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि किसी भी समाज के सांस्कृतिक पतन के पीछे मुख्य कारण यौन परंपरा में ढील है। अनविन के अनुसार संस्कृति का उच्चतम उत्कर्ष सबसे शक्तिशाली संयोजन विवाह पूर्ण शुद्धता के साथ 'पूर्ण एकपत्नीत्व' था। वे संस्कृतियां जिन्होंने कम से कम तीन पीढ़ियों तक इस संयोजन को बनाए रखा, वे साहित्य, कला, विज्ञान, वास्तुकला और कृषि सहित हर क्षेत्र में सभी अन्य संस्कृतियों से आगे रहीं। निश्चित रूप से वह युवा पीढ़ी जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को ही विकास और आत्म-संतुष्टि का अंतिम मानदंड मानती है, उसके लिए समाज, संस्कृति और सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रश्न अप्रासंगिक और कभी-कभी दमनकारी तक प्रतीत होता है। यदि लिव-इन संबंधों को विवाह की तुलना में अधिक सुरक्षित, स्वतंत्र और आधुनिक विकल्प माना जाए, तो यह विचारणीय है कि ऐसे संबंध टूटने के बाद तमाम युवक-युवतियां आपराधिक आरोपों, भावनात्मक विवादों और कानूनी संघर्षों में क्यों उलझ जाते हैं? यदि यह व्यवस्था वास्तव में उनके हितों की रक्षा करती, तो अदालतों में ऐसे मामलों की संख्या लगातार न बढ़ती। इसका सबसे विरोधाभास तो तब दिखता है, जब लिव-इन को 'सशक्तीकरण' और 'स्वतंत्रता' का प्रतीक मानने वाली युवतियां कुछ वर्षों के सहजीवन के बाद उसी साथी से विवाह की अपेक्षा करने लगती हैं। स्वतंत्रता के नाम पर विवाह जैसी संस्था को पुरातन या बाधक बताने वाली महिलाएं अंततः इसी विवाह संस्था में स्थिरता, सुरक्षा और सामाजिक स्वीकृति तलाशने लगती हैं। यह दर्शाता है कि लिव-इन का आकर्षण भले ही शुरुआत में आधुनिक और सुविधाजनक प्रतीत हो, किंतु समय के साथ सामाजिक वास्तविकताएं और भावनात्मक अपेक्षाएं उन्हें फिर उसी ढांचे की ओर लौटने के लिए प्रेरित करती हैं, जिसे वे पहले अनावश्यक बंधन मानकर अस्वीकार कर चुकी होती हैं।

अदनान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और तीन अन्य के मामले में ही इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने तल्ख टिप्पणी में कहा था कि विवाह संस्था व्यक्ति को जो सुरक्षा, सामाजिक स्वीकृति, प्रगति और स्थिरता प्रदान करती है, वह लिव-इन-रिलेशनशिप कभी नहीं दे सकता। लिव-इन को इस देश में विवाह संस्था के अप्रचलित हो जाने के बाद ही सामान्य माना जाएगा, जैसे

कई तथाकथित विकसित देशों में विवाह संस्था की रक्षा करना उनके लिए एक बड़ी समस्या बन गई है। हम भविष्य में अपने लिए बड़ी समस्या पैदा करने जा रहे हैं। इस देश में विवाह संस्था को नष्ट करने और समाज को अस्थिर करने और देश की प्रगति में बाधा डालने की व्यवस्थित योजना है। कुछ फिल्मों और टीवी धारावाहिकों से विवाह संस्था का खात्मा हो रहा है। विवाहित रिश्तों में साथी के साथ बेवफाई और स्वतंत्र लिव-इन-रिलेशनशिप को प्रगतिशील समाज की निशानी बताया जा रहा है। युवा पीढ़ी ऐसे दर्शन की ओर आकर्षित हो रही है, क्योंकि उन्हें इसके दीर्घकालिक परिणामों का पता नहीं है।... एक रिश्ते से दूसरे रिश्ते में कूदना किसी भी तरह से संतोषजनक जीवन नहीं है। विवाह संस्था व्यक्ति के जीवन को जो सुरक्षा और स्थिरता प्रदान करती है, वह लिव-इन रिलेशनशिप से संभव नहीं। ऐसे रिश्तों से पैदा होने वाले बच्चों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

न्यायालय की यह टिप्पणी चेतावनी देती है कि यदि युवा पीढ़ी आधुनिकता के नाम पर वास्तविकता से आंखें चुराती रही, तो भविष्य में इस भ्रम की कीमत उसे भारी सामाजिक और व्यक्तिगत संकटों के रूप में चुकानी पड़ेगी। तब वापसी का कोई मार्ग भी शेष नहीं रहेगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 29-11-25

डिजाइन किए गए शहरों की जरूरत

अमित कपूर, (अमित कपूर इंस्टीट्यूट ऑफ कंपटीटिवनेस के चेयरमैन हैं। आलेख में मीनाक्षी अजित का भी सहयोग)

शहर अचानक नहीं बन जाते। वे समय के साथ तैयार होते हैं। शहरों के निर्माण में नीतियों, निर्णयों, फौरी उपायों, दुर्घटनाओं और रखरखाव आदि सभी का हाथ होता है। जब अर्थव्यवस्था का विस्तार होता है तो वे फैलते हैं, जहां शासन कमजोर होता है वहां वे कमजोर पड़ते हैं। उनका जीवन इस बात पर निर्भर करता है कि लोग उनका किस प्रकार उपयोग करते हैं बजाय कि इस बात के कि उनके निर्माण के लिए क्या योजना बनाई गई थी।

भारतीय शहर भी इसके अपवाद नहीं हैं। हमारे अधिकांश शहर महत्त्वाकांक्षा और तात्कालिकता के संगम पर विकसित हुए हैं। वे अक्सर उन प्रणालियों से कहीं अधिक तेजी से बढ़े हैं जिन पर वे आधारित हैं। अनुमान है कि वर्ष 2036 तक भारतीय शहरों में करीब 60 करोड़ लोग रह रहे होंगे और वे सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी में करीब 70 फीसदी का योगदान देंगे। इसके बावजूद यह स्पष्ट है कि इस विकास का बड़ा हिस्सा बिना किसी सुसंगत डिजाइन या साझा उद्देश्य के हुआ है और होता ही जा रहा है। यही वजह है कि दशकों तक निर्माण, प्रतिक्रिया

और समायोजन के बाद अब यह प्रश्न स्पष्ट रूप से सामने आता है कि डिजाइन पर बातचीत पहले कभी इतनी जरूरी नहीं थी।

डिजाइन को अक्सर सौंदर्य, मुखड़े, साफ-सुथरे रेखांकन और प्रतीकात्मक संरचनाओं का प्रतीक माना जाता है। शहरों के संदर्भ में यह केवल दिखावटी नहीं होता बल्कि ढांचागत भी होता है। यह निर्धारित करता है कि कौन स्वागतयोग्य महसूस करता है और कौन अलग-थलग। कौन आगे बढ़ने योग्य होता है और कौन फंसा रहता है। यह निर्धारित करता है कि सार्वजनिक जीवन खुले में फलेगा-फूलेगा या गेटों, दीवारों और निजी मॉल के पीछे दम तोड़ देगा। रिक ग्रिफिथ्स ने डिजाइन को नियंत्रण के एक तंत्र के रूप में प्रस्तुत किया है, जो दिखने में तटस्थ लगने वाले नियोजन निर्णयों के माध्यम से शक्ति और पहुंच को आकार दे सकता है। उदाहरण के लिए, बिना फुटपाथ वाली चौड़ी सड़क कारों को विशेषाधिकार देती है। आरपार न देखे जा सकने वाली गेटेड कम्युनिटी पड़ोस की पारिस्थितिकी को खंडित करती है। बिना आंतरिक संपर्क के विचार के बनाई गई मेट्रो लाइन उन लोगों के खिलाफ पक्षपाती होती है जिनके पास वाहन नहीं हैं। इस प्रकार निर्मित रूप स्वयं एक निर्देश बन जाता है।

परंतु एक और तरीका है जिसके माध्यम से डिजाइन पर विचार किया जा सकता है। यह जमीनी नहीं लेकिन अनुभव आधारित है। मानव केंद्रित डिजाइन एक उपयोगी प्रतिविचार पेश करता है: अनुमानों के आधार पर डिजाइन करने के बजाय हम जीवंत वास्तविकता के आधार पर डिजाइन तैयार करते हैं। टेक्सस में अल पासो सिटी का उदाहरण यही दिखाता है। जब निवासियों ने कोविड परीक्षण केंद्रों से दूरी बनाई, तो स्थानीय सरकार ने न तो दोषारोपण किया और न ही अधिक संकेतक लगाए। उन्होंने देखा, सुना और पुनः डिजाइन किया। छोटे-छोटे हस्तक्षेपों ने व्यवहार बदल दिया। यह सबक परीक्षण केंद्रों के बारे में नहीं है। यह दृष्टिकोण के बारे में है। यह निर्णय लेने से पहले शासन द्वारा सुनने के बारे में है।

भारत में न केवल यह बदलाव वांछित है बल्कि जरूरी भी है। हमारे शहर भविष्य की ओर इतनी तेज गति से बढ़ रहे हैं कि उन्हें इरादों की सख्त जरूरत है। वर्ष2011 और 2036 के बीच भारत की शहरी आबादी के करीब तीन-चौथाई बढ़ने की उम्मीद है। भारत 2050 के जिस अधोसंरचना पर निर्भर करेगा उसका अधिकांश हिस्सा अभी मौजूद नहीं है। यह एक दुर्लभ क्षण है। पुराने देशों को जहां पुनर्निर्माण के लिए मजबूर होना पड़ा, वहीं भारत अभी अपनी प्रारंभिक रूपरेखा गढ़ने की प्रक्रिया में है। यदि देश अपनी पुरानी धारणाओं जैसे कार-केंद्रित गतिशीलता, ऊपर से नीचे तक की योजना और विशिष्ट क्षेत्रों को दोहराता है, तो हम आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थायी असमानता बना देंगे। भविष्य की दृष्टि से बन रहे शहर केवल तकनीक से परिभाषित नहीं होते। स्मार्ट पोल और डैशबोर्ड मदद कर सकते हैं, लेकिन डिजाइन का मूल सार है सामंजस्य। यानी नीतियों को वास्तविक जीवन से जोड़ना, बुनियादी ढांचे को गतिशीलता के पैटर्न से जोड़ना, और जलवायु जोखिम को लचीली प्रणालियों से जोड़ना।

उदाहरण के लिए, अनुमान बताते हैं कि भारत को 2050 तक अत्यधिक गर्मी, बाढ़ और जलवायु के कारण होने वाले प्रवासन से निपटने के लिए 2.4 लाख करोड़ डॉलर से अधिक की जलवायु आधारित अधोसंरचना की आवश्यकता हो सकती है। इस स्तर पर डिजाइन को लेकर विचार केवल एक सौंदर्यशास्त्रीय अनुशासन के रूप में नहीं, बल्कि एक समेकित अनुशासन के रूप में होती है।

शहरों को डिजाइन करने का अर्थ सही प्रश्न करना भी है। सड़कों के चौड़ीकरण के पहले सवाल होना चाहिए कि जाम क्यों लग रहा है। झीलों के सौंदर्यीकरण के पहले पूछना चाहिए कि उनका अंत क्यों हुआ। सड़क पर सामान बेचने वालों को

बेदखल करने के बजाय यह पूछें कि अनौपचारिक अर्थव्यवस्थाएं शहरों को कैसे बनाए रखती हैं। जिस क्षण शहर अलग तरह से प्रश्न पूछना शुरू करता है, उसी क्षण वह अलग ढंग से डिजाइन करना शुरू कर देता है। सुनना एक पद्धति बन जाता है, मात्र औपचारिकता नहीं।

देश के कुछ शहरों ने ऐसे बदलावों को अपनाना शुरू किया है। उदाहरण के लिए पुणे के साइकलिंग नेटवर्क की पायलट परियोजना, चेन्नई की सड़कों को नए सिरे तैयार करने की योजना, अहमदाबाद की बीआरटी प्रणाली और सूरत की मजबूत योजना इरादे के साथ की गई डिजाइन का उदाहरण है। ये पहल केवल स्थापत्य कौशल से नहीं उभरीं, बल्कि वे प्रणालियों, शासन और इस्तेमाल करने वालों अनुभव से उभरी हैं।

इसके बावजूद चुनौती बरकरार है। बहुत कम प्रशिक्षित योजनाकार, बिखरे हुए क्षेत्राधिकार प्राधिकरण, और योजना संस्थाएं जो अक्सर पुराने ढांचों के साथ काम करती हैं। इसलिए डिजाइन केवल विशेषज्ञों का क्षेत्र नहीं रह सकता। यदि भारत डिजाइन को सोचने के एक तरीके के रूप में अपनाता है तो हमारे शहर मशीनों के बजाय पारिस्थितिकी के साथ विकसित हो सकते हैं।

ऐसे शहर जहां पैदल चलना सुरक्षित हो, सार्वजनिक परिवहन गरिमापूर्ण हो, सार्वजनिक स्थान वास्तव में सार्वजनिक हों, और सेवाएं अफसरशाही के बजाय सहज लगती हों। ऐसे शहर जहां डिजाइन अदृश्य इसलिए न हो कि उसे नजरअंदाज किया गया है, बल्कि इसलिए हो कि वह प्रभावी ढंग से काम कर रहा है।

भारत शहरी विकास के निर्णायक मोड़ पर खड़ा है। जो हम अब बनाएंगे, वह हमसे आगे तक बना रहेगा। हमारे सामने अवसर केवल शहरों का विस्तार करने का नहीं है, बल्कि उन्हें सोच-समझकर इस तरह डिजाइन करने का है कि वे ऐसे वातावरण बनाएं जो लोगों को केवल जीवित रहने ही नहीं, बल्कि फलने-फूलने में सक्षम बनाएं। यदि हम सोच को सही दिशा दें, डिजाइन को सही ढंग से करें और सुनने की क्षमता को सही रूप में अपनाएं, तो शायद भविष्य के भारतीय शहर ऐसे होंगे जिन पर हमें गर्व होगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 29-11-25

जल का बढ़ता संकट

कामिल खान

जल मानव जीवन के लिए वायु के पश्चात सर्वाधिक आवश्यक तत्व है। जल प्रकृति की अनमोल और अद्भुत देन है। जीवधारियों के शरीर में 70 से 80 फीसदी तक जल पाया जाता है। जल को अमृत या जीवन कहा गया है, अर्थात जल ही जीवन है। प्रसिद्ध विद्वान गोथे ने जल के महत्व के बारे में लिखा है कि प्रत्येक वस्तु जल से उद्भावित होती है और जल के द्वारा ही प्रतिपालित होती है।

जल का मुख्य रूप से तालाबों, कुओं, बावड़ियों और नदियों से ही मिलता है। खास बात यह है कि आजकल तालाब और कुआँ लुप्तप्राय होते जा रहे हैं। ऐसे में जल संकट का बढ़ना और भी बढ़ जाता है। दूसरे सूखा की स्थिति आती रहती है। कई राज्यों में भूमि के निचले स्तर से जल निकालने के लिए नवीन तकनीक सबमर्सिबल पंपों का प्रयोग किया जा रहा है जिससे जल स्तर गिरता जा रहा है। दूसरी ओर नहरों और नालियों के माध्यम से होने वाली सिंचाई से फसलों में पानी पहुंचाने में अधिक मात्रा में नालियां पानी सोख लेती हैं। जिससे दोगुना पानी बर्बाद हो जाता है। जल संकट संरक्षण की कमी के साथ-साथ जल प्रदूषण भी जल संकट का एक बड़ा कारण है। किसानो द्वारा अधिक पैदावार लेने के चक्कर में खेतों में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से भूजल में हानिकारक तत्वों का मिश्रण हो जाता हैं। कल कारखानों से निकले गंदे पानी व रासायनिक कचरे को नदियों में बहने गंदे नालों का निकास नदियों में करने आदि से भी जल प्रदूषण होता है। प्रदूषित जल से प्राय है हैजा, डायरिया, पेचिस, इंसेफेलाइटिस तथा यकृत संबंधी अनेक बीमारियां हो जाती हैं।

जल प्रदूषण का जनक स्वयं मानव है, जो विभिन्न क्रियाकलापों से जल प्रदूषण की समस्या को गंभीर बना रहा है। जल स्रोतों में मल-मूत्र, मृतक शरीर और कूड़ा करकट एक तरह धरातलीय स्रोतों को दूषित कर रहा है तो दूसरी ओर भूमिगत किया गया मल मूत्र आदि भूजल को भी विषाक्त कर रहा है जिसको स्वच्छ करना एक दुरूह कार्य है। मानव और जानवरों के मल-मूत्र में यूरिया व यूरिक एसिड पाया जाता है जो जल स्रोतों की प्रदूषण प्रदूषण का बढ़ा देता है। जनसंख्या में वृद्धि के साथ ही यह समस्या उत्तरोतर बढ़ती जा रही है। सांस्कृतिक व धार्मिक सम्मेलनों, मेलों व उत्सव आदि के दौरान भी जल स्रोत प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं चिंता की बात यह है की गंगा जैसी पवित्र नदी भी उसके किनारे बसे 114 शहरों में विभिन्न रूपों में बढ़ती गंदगी के कारण दूषित हो गई है। जल प्रदूषण की भयावहता की समस्या मानव, अंत वनस्पति पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार कर रही है यदि विश्व में जल प्रदूषण इसी गति से बढ़ता रहा तो आने वाले कुछ वर्षों में पीने के पानी में तथा खेतों दिया जाने वाला जल विषाक्त प्रदूषण होगा। परिणामतः उत्पादन में कमी के साथ-साथ भखमरी, जल जनित बीमारियां और महामारियां तेजी से पांव फैलाएंगे तथा जल प्रदूषण का नियंत्रण वर्तमान समय की मांग है।

विडंबना है कि पृथ्वी के तीन चौथाई भाग पर जल होने के बावजूद इसका केवल 0.01 फीसदी भाग ही पीने योग्य जल उपलब्ध है लेकिन चिंता का विषय है कि इस सीमित जल को भी मानव अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार से प्रदूषित कर रहा है ऐसा अनुमान लगाया गया है कि विश्व के लगभग 80 फीसदी जल स्रोतों का पानी पीने लायक नहीं है । संयुक्त राष्ट्र संघ के आंकड़ों से इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि विश्व की 6 अरब आबादी में हर छठ व्यक्ति सुरक्षित पेयजल के बिना जीवन यापन कर रहा है। चिंता का विषय यह भी है कि पानी से फैलने वाले रोगों के कारण हर आठवें सेकंड में एक बच्चा मौत का शिकार हो जाता है। विश्व जल विकास की रिपोर्ट के मुताबिक जल प्रदूषण की भयावता

की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि 21वीं शताब्दी ऐसी शताब्दी है, जिसमें सबसे प्रमुख समस्या जल की किस्म और प्रबंधन की है।

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रतिदिन 20 लाख टन कचरा नदियों झीलों तथा जल धाराओं के हवाले कर दिया जाता है। एक लीटर का शराव प्रदूषित जल कचरा लगभग 8 लीटर ताजे जल को प्रदूषित कर देता है। एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व के लगभग 12,000 घन किलोमीटर प्रदूषित जल है जो संसार में 10 सबसे बड़ी नदियों के बेसिनों में उपस्थित जल से भी अधिक है।

अपने देश में औसत वार्षिक वर्षा 4000 क्यूविक मीटर आंकी गई है। वाष्पीकरण आदि की प्राकृतिक प्रक्रिया के पश्चात देश में औसत वार्षिक जल की उपलब्धता एक 1869 क्यूबिक मीटर पाई गई है। स्थलाकृति, जल वैज्ञानिक एवं अन्य बधाओं के कारण उपयोग योग्य जल की मात्रा 1123 क्यूबिक मीटर होता है। उपयोग योग्य जल संसाधनों के संवर्धन की दृष्टि से नदियों को परस्पर जोड़ने के लिए जल की कमी वाले क्षेत्रों में जल अंतरण द्वारा बाढ़ के अधिशेष जल के उपयोग करने वर्षा जल संचयन और भूजल पुनर्भरण जैसे विभिन्न उपायों की योजना की गई है।

इन स्थितियों में जल के बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जल का विकल्प केवल जल ही है। विश्व की लगभग 16 फीसदी जनसंख्या भारत में और पानी की मात्रा सिर्फ चार प्रतिशत ही उपलब्ध है। देश में नदियों की पर्याप्तता और मानसून की बारिश के बाद भी प्यास बुझाने के लिए स्वच्छ जल और किसानों को सिंचाई के लिए भरपूर जल उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। वर्षा का जल कुछ जल तालाबों, बांधों और पोखरों में एक पाता शेष जल का अधिक बाग नदियों नालों से होता हुआ सागरों में पहुंच जाता है। अधिकतर खेती मानसून की वर्षा पर ही निर्भर करती है।

वर्तमान समय में जल संकट और बढ़ते प्रदूषण में मानव जीवन के भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 29-11-25

भूकंप का जोखिम

संपादकीय

भारत का नया भूकंपीय क्षेत्रीकरण मानचित्र चिंता के साथ ही सावधानी बढ़ाने की भी मांग कर रहा है। नए मानचित्र के मुताबिक, हिमालय का क्षेत्र अब उच्चतम जोखिम वाले क्षेत्र जोन-6 में शुमार है। ध्यान देने की बात है, पहले हिमालय का यह गलियारा चौथे और पांचवें जोन में आता था। इसका मतलब, हिमालय क्षेत्र में बड़े भूकंप का जोखिम बढ़ रहा है। हिमालय पर्वत को दुनिया की सबसे सक्रिय टेक्टोनिक प्लेटों की सीमाओं में से एक पर स्थित होने के कारण सबसे अधिक भूकंपीय जोखिम वाले क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भारतीय प्लेट लगभग पांच सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की दर से धीरे-

धीरे उत्तर की ओर बढ़ रही है और यूरेशियन प्लेट से टकरा रही है। इस टकराव ने न केवल हिमालय का निर्माण किया, इससे उसकी ऊंचाई भी बढ़ रही है। इससे पृथ्वी की सतह के नीचे काफी दबाव पैदा हो रहा है। जब यह दबाव कम होता है, तो शक्तिशाली भूकंप आते हैं। ऐसा नहीं है कि भूकंप का खतरा केवल हिमालय क्षेत्र में है, व्यापकता में देखें, तो अब भारत का 61 प्रतिशत हिस्सा मध्यम से उच्च भूकंपीय जोखिम वाला क्षेत्र हो गया है।

दरअसल, भूकंप के जोखिम के आधार पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों का वर्गीकरण एक सामान्य प्रक्रिया है और इसके जरिये यह जाना जाता है कि देश का कौन-सा क्षेत्र कितने खतरे में है। इसके बाद ही, क्षेत्रवार सावधानी बरतने के प्रयास होते हैं। जोखिम का ध्यान रखते हुए इमारतों, बुनियादी ढांचों और विस्तारित शहरों की योजना को नया रूप दिया जाता है। अब यहां प्रश्न उठता है कि इस जोखिम को अचानक कैसे बढ़ा दिया गया है? वास्तव में, मध्य हिमालय क्षेत्र में खास तौर पर जोखिम को कम आंका जा रहा था, क्योंकि इस क्षेत्र में लगभग 200 वर्षों में कोई बड़ा सतही विखंडन नहीं देखा गया है। आगे अध्ययन इस प्रश्न के साथ भी होना चाहिए कि कहीं जोखिम को कम करके तो नहीं देखा जा रहा है। अत: खतरे के स्पष्ट वर्गीकरण की जरूरत है, ताकि जरूरत के हिसाब से पूरी तैयारी रहे। ताजा भूकंपीय जोखिम अनुमानों पर विश्वास करना चाहिए। भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) ने संशोधित पैमाने पर जोनिंग का निर्धारण किया है। सक्रिय भ्रंश विशेषताओं, अधिकतम संभावित भूकंप आशंकाओं, दूरी के साथ कंपन में कमी और भूमिगत भू-विज्ञान को ध्यान में रखते हुए जोखिमों का निर्धारण किया गया है। खतरे को आंकने की पुरानी प्रणाली पिछले भूकंप के केंद्रों, व्यापक भूवैज्ञानिक लक्षणों और मृदा श्रेणियों, ऐतिहासिक क्षति सर्वेक्षणों पर बहुत अधिक निर्भर थी। ऐसे में, पुख्ता अनुमान लगाना आसान नहीं था। जमीनी तथ्यों का पूरा अनुमान लगाए बिना ही जोखिमों की चर्चा होती थी।

जाहिर है, नए भूकंपीय नक्शे के बाद इंजीनियरों और योजनाकारों से आग्रह रहेगा कि वे साल 2016 के मानचित्र के स्थान पर 2025 के मानचित्र को अपनाएं। जो भी निर्माण कार्य हो, वर्तमान खतरे को देखकर ही किया जाए। भवन निर्माण में बदलाव करना अब बहुत जरूरी है। यह बदलाव विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारत की लगभग 75 प्रतिशत आबादी अब भूकंपीय रूप से संवेदी क्षेत्रों में रहती है। अस्पतालों, स्कूलों, पाइपलाइनों, पुलों व प्रमुख सार्वजनिक भवनों सहित महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे को अब बड़े भूकंप के बाद भी चालू रहने के लिए डिजाइन किया जाना चाहिए, ताकि आपदा के समय भी सेवाएं बाधित न हों। जान-माल की सुरक्षा के हिसाब से बसावट में जरूरी बदलाव समय की सबसे बड़ी मांग है।